कबीर के काव्य में भक्तिभावना : एक विश्लेषण

नविन्द्रा बाई*

सारांश– भारतीय भूमि पर भक्ति की अविरल धारा युगों–युगों से बहती आ रही है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि हिन्दी साहित्य के एक युग का नाम ही भक्तियुग या भक्तिकाल है। कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण ज्ञानमार्गी संतपरम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं । भक्ति के माध्यम से कबीर ने वर्ग व जातिगत विभेद को दूर किया है तथा विश्वव्यापी प्रेम से विश्वधर्म की स्थापना भी की है । कबीर की भक्ति में सभी मनुष्यों के लिए समानता की भावना है। उनकी भक्ति परम्परा में किसी भी बाह्यचार या धार्मिक कर्मकांड को स्थान नहीं दिया गया है। उनकी भक्ति ईश्वर के दरबार में सभी की समानता और एकता की पक्षधर है। कबीर ने ज्ञान व प्रेम के द्वारा निर्गुण भक्ति को चरम परिणति तक पहुँचाया हे। कबीर की भक्ति सहज साधना पर आधारित है जिसमें लौकिक जगत को एकाकार कर लेने की अद्‌भुत क्षमता है ।

मुख्य शब्द–कबीर, काव्य, भक्ति, विश्लेषण

कबीर के काव्य में भक्तिभावना : एक विश्लेषण

भारतीय धर्म साधना में भक्तिमार्ग का धार्मिक, साहित्यिक सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व रहा है। भक्ति मार्ग ने ही सर्वप्रथम व्यापक रूप से समाज को प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति में अन्य मार्गों की तुलना में भक्ति मार्ग को अधिक महत्त्व दिया गया है। भारतीय भूमि पर भक्ति की अविरल धारा युगों–युगों से बहती आ रही है। भक्ति भावना के बीज वैदिक वाङ्मय में ही मिल जाते हैं। वैदिक ऋचाओं और उपनिषदों को ही भक्ति के मूल स्त्रोत माना जा सकता है। डॉ॰ जदुनाथ के अनुसार "भक्ति शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख उपनिषदों में ही हुआ है।"

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि हिन्दी साहित्य के एक युग का नाम ही भक्तियुग या भक्तिकाल है। कबीरदास सूरदास, तुलसीदास आदि भक्तिकाल के प्रमुख कवि रहे हैं । कबीरदास निर्गुण

शोधार्थी, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र ।

परम्परा के भक्त कवि हैं। कबीर किसी सगुण, साकार से प्रेम व उसकी भक्ति न करके निर्गुण व निराकार का जाप करते हैं । कबीर की भक्ति साधना में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है । कबीर का मानना है कि गुरु की भक्ति से ही इस जगत को पार किया जा सकता है। कबीरदास ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु को आवश्यक मानते हुए भी गुरु के शारीरिक साक्षात्कार को आवश्यक नहीं मानते । कबीर ने जगह–जगह पर जो सतगुरु की बात कही है वह साक्षात् भगवान् के सन्दर्भ में कही है अर्थात् सतगुरु के रूप में कबीर ने साक्षात् भगवान का स्मरण किया है। कबीर ने कहा है कि –

गुरु बिनु कौन बतावै बाट बड़ा विकट यम घाट ।

कबीरदास भक्तिकाल के पहले संत हैं जिन्हें पूर्ण भक्त का दर्जा प्राप्त हुआ है। कबीर का लक्ष्य कविता करना नहीं था सहज ही उनकी वाणी में कविता की रचना हो गई । कबीरदास तो निर्गुण–निराकार का स्मरण करना ही अपना स्वाभाविक कर्म मानते थे। कबीर की भक्ति भावना में आत्मसमर्पण का भाव है। वे कहते हैं– हे गुसाईं ! मैं तेरा गुलाम हूँ, मुझे बेच दो । कबीर की भक्ति में प्रेमभावना है। प्रेमभक्ति में रत होने के लिए अहंकार व दंभ की भावना का त्याग करना पड़ता है अर्थात् स्वयं के घर को जला देने का भी साहस होना चाहिए। इसी संदर्भ में कबीर कहते हैं –

कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ ।
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ ।

कबीर के साहित्य में भक्ति के सभी रूप स्पष्ट रूप से देखने को मिलते है। भक्ति के इन नौ आयामों को कबीर में देखा जा सकता है –

(1) श्रवण – कबीर राम–भजन के श्रवण के लिए अत्यंत व्याकुल रहते हैं । उनकी स्थिति मृग के समान हो जाती है–

ऐसा कोई ना मिले, राम भक्ति का गीत ।
तन मन सोंपे मृग ज्यूं, सुने बधिक का गीत ।।

(2) कीर्तन – कबीर के अनुसार कीर्तन से अभिप्राय है कि राम में मन का ऐसा तन्मय कर देना कि नित्य एकत्व की सिद्धि हो जाये । कबीरदास का मानना था कि स्वयं भी हरि कीर्तन करो और दूसरों से भी कीर्तन करवाओं–

कबीर आपण राम कहि, औरा राम कहाई ।

(3) स्मरण – कबीर का मानना है कि मनुष्य को अपने उद्धार के लिए मन–वचन व कर्म से ईश्वर का स्मरण करना चाहिए–

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई ।
राम नाम सिमरन बिनु, बूड़ते अधिकाई ।।

(4) पादसेवनम् – कबीर अनन्त सुख पाने के लिए सदा हरि के चरणों में निवास करना पसन्द करते है–

कहे कबीर दासनि कौ दास
अब नहीं छाड़ौं हरि के चरन निवास ।

(5) अर्चन – कबीर ईश्वर की अर्चना धूप, दीप, नैवेद्य आदि का प्रयोग करते हैं लेकिन उनकी आरती ज्ञान की आरती है। इसलिए अपने ईश्वर पर मन का सुमन अर्पित करते हैं ।

(6) वन्दन – कबीर ईश्वर की वन्दना में अपने मन को ईश्वर के सामने झुका देते हैं ।

(7) दास्य – कबीर अपने आराध्य का दास बनने में अपना गौरव समझते हैं–

कबीरा कुता राम का, मुतिया मेरा नांउ
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तिउ जांऊ।।

(8) सख्य भाव – कबीर ने अपने राम के साथ सखा संबंध भी स्थापित किए । इसके साथ ही कबीर ने स्वयं को प्रियतमा व परमात्मा को प्रियतम के रूप में भी स्वीकार किया है।

हरि मोरा पीव मैं हरि की बहुरिया ।

(9) आत्म–समर्पण – कबीर ने गुरु के प्रति आत्म निवेदन किया तथा आत्मनिवेदन से आगे बढ़ते हुए उन्होंने ईश्वर के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया ।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागे है मेरा ।।

कबीर के साहित्य में नवधा भक्ति के रूप सहज व स्वाभाविक रूप से ही प्रकट होते है । कबीर शास्त्रार्थ भक्त नहीं थे अपितु स्वयमेव ही इन रूपों का समावेश हो गया ।

कबीरदास ने भक्ति साधना के लिए गुरु के साथ–साथ शुद्ध आचरण को भी आवश्यक माना है। मन, वचन तथा कर्म तीनों की शुद्धता को ही आवश्यक माना है । कबीर के अनुसार तीनों की शुद्धता से ही स्मरण में चित्त लगता है ।

भगति भजन हरि नॉव है, दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा–कर्मणा, कबीर सुमिरन सार ।।

कबीर ने मन को शुद्ध करने के साथ मन पर नियन्त्रण रखने की बात भी की है। भक्ति साधना में मनुष्य तब ही लीन रह सकता है जब मन पर नियन्त्रण व संयम हो। कबीर का मानना था कि हमें निष्काम भाव से भक्ति करनी चाहिए। भक्ति का लक्ष्य धन तथा पुत्र की प्राप्ति रखने पर परमशांति की प्राप्ति नहीं की जा सकती । मानव जीवन की सार्थकता परमात्मा के नाम का स्मरण करने से ही संभव है। नाम स्मरण से ही संसार रूपी समुद्र को पार किया जा सकता है।

सिरजनहार नाऊँ धूँ तेरा, भौसागर, तिरिबै कू मेरा ।।

कबीर भक्ति को एकांकी नहीं मानते । उनका मानना था कि मनुष्य अकेला ही भक्ति के मार्ग पर नहीं चल सकता । भक्ति मार्ग पर चलने के लिए कबीरदास ने सत्संगति को भी अनिवार्य माना है ।

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाई ।

कबीर ईश्वर मिलन के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने को तत्पर है । कहते हैं–

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मेरा ।।

कबीर के पदों में अनन्य प्रेमभावना की अभिव्यक्ति रति श्रृंगार के रूपकों के माध्यम से भी हुई है । परमात्मा से विरह होने पर कबीर कहते हैं –

तलफै बिन बालम मोर जिया ।

कबीर ने भक्ति और प्रीति के दाम्पत्य रूपकों में प्रेम की तन्मयता की व्यंजना की है –

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।

कबीर ने भक्ति मार्ग में प्रेम के बादल की वर्षा से अपने अंतर्तम की प्यास बुझाई है । प्रेम और भक्ति के सेंकड़ों पदों की रचना कबीरदास ने अपने जीवनकाल के अंतिम दिनों में की है। कबीर प्रेम से बहुत अधिक प्रभावित थे, वे प्रेमी को खोजते है, उन्हें प्रेमी नहीं मिलता, प्रेमी से जब प्रेमी का मिलन हो जाता है तो विष अमृत में बदल जाता है । कबीर की भक्ति साधना बाह्य आडम्बरों व जाति–प्रथा से मुक्त भी कबीर के मतानुसार सहज समाधि ही भली अर्थात् उपयुक्त है । कबीर प्रेम मार्ग के द्वारा जन–सामान्य को एक ऐसा मार्ग दिखाना चाहते थे जिसमें किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिकता की गंध न हो । कबीर ने सारग्राही प्रवृति का अनुसरण करते हुए सुफियों से भी प्रेमतत्व को ग्रहण किया है। उनका प्रेम भाव आध्यात्मिक धरातल पर जीव और परमात्मा के सम्बन्धों का आधार है ।

कबीर ने भक्ति के माध्यम से ब्रह्म को रूप और गुण से सीमित न करते हुए उसे प्रतीकों के द्वारा मानसिक धरातल पर उतारने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने प्रेम के माध्यम से आडम्बर और कर्मकांडों की आवश्यकता को दूर किया है।

कबीर ने अशिक्षित जनता के हृदय में ब्रह्म की अनुभूति को उत्पन्न करने के लिए विविध संबंधों की अवधारणा और गुरु, पिता, माता, स्वामी, मित्र और पति के रूपकों के माध्यम से ब्रह्म से निकटता स्थापित की है। कबीर ने सूफी मत के प्रेमतत्व और वैष्णव धर्म के भक्तितत्व को मिलाकर हिन्दू और मुसलमानों के बीच

सांप्रदायिकता दूर करने का भी प्रयास किया था। कबीर के साहित्य में वर्गविभेद व जातिभेद का कोई स्थान नहीं है। भक्ति के माध्यम से कबीर ने वर्ग व जातिगत विभेद को दूर किया है तथा विश्वव्यापी प्रेम से विश्वधर्म की स्थापना भी की है । कबीर की भक्ति में सभी मनुष्यों के लिए समानता की भावना है। उनकी भक्ति परम्परा में किसी भी बाह्यचार या धार्मिक कर्मकांड को स्थान नहीं दिया गया है। उनकी भक्ति ईश्वर के दरबार में सभी की समानता और एकता की पक्षधर है। कबीर की भक्ति धारा सम्पूर्ण जनमानस में सद्वृत्ति के माध्यम से ब्रह्म साक्षात्कार के लिए उपर्युक्त वातावरण तैयार करती है। कबीर निष्काम भक्ति के पक्षधर है। भक्ति का परमलक्ष्य ब्रह्म से मिलन या सांसारिक चक्र से मुक्ति है ओर यह तब ही सम्भव है जब निष्काम भाव से भक्ति की जाए। कबीर की भक्ति उस बीज के समान है जो मानव को ब्रह्म तक पहुंचने के लिए एक चेतना का उद्भव करता है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण ज्ञानमार्गी संतपरम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं । उनकी भक्ति का मूलतत्व प्रेम है जो समर्पण पर आधारित है। वे समाज–सुधार, मानव–प्रेम तथा ज्ञान–बोध आदि की कड़ी प्रेम–भावना को मानते हैं। कबीर ने भक्ति मार्ग में गुरु की कृपा का होना अनिवार्य माना है। इसके साथ–साथ सदाचार, मन पर संयम तथा सत्संगति को भी भक्ति के मार्ग पर चलने के लिए महत्त्वपूर्ण माना है। कबीर ने ज्ञान व प्रेम के द्वारा निर्गुण भक्ति को चरम परिणति तक पहुँचाया हे। अतः कबीर की भक्ति सहज साधना पर आधारित है जिसमें लौकिक जगत को एकाकार कर लेने की अद्भुत क्षमता है ।

संदर्भ सूची :

1. मनमोहन सहगल, पंजाब के निर्गुण काव्य का दार्शनिक अध्ययन, पृ॰ 3
2. शिवकुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काल, 2010, पृ॰ 77
3. डॉ॰ श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रन्थावली, पद 120
4. वही, पृ॰ 5
5. वही, पद 180
6. वही, पद 393
7. वही, पृ॰ 15, साखी 14
8. वही, पृ॰ 143
9. वही, साखी–3
10. वही, साखी–4, पृ॰ 4
11. वही, रमैनी, सं॰ 183

12 . पारसनाथ तिवारी (सं॰), कबीर ग्रन्थावली, पृ॰ 142
13 . श्यामसुन्दरदास, पूर्व उद्धृत, पृ॰ 62
14 . हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, 1990, पृ॰ 250
15 . रामकुमार वर्मा, कबीर एक अनुशीलन, 1998, पृ॰ 85